बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 296

बैंकरों का बचाव

सरकारी क्षेत्र के बैंकर ऋण देने संबंधी निर्णय लेने में अनिच्छुक नजर आते रहे हैं क्योंकि ऋण के फंसे हुए कर्ज में तब्दील होने पर उन्हें जांच एजेंसियों की कार्रवाई का खौफ सताता है। आखिरकार सरकार ने बैंकरों को अनावश्यक प्रताड़ना से बचाने की अपनी बात पर अमल करने का फैसला कर लिया है। यह स्वागतयोग्य कदम है क्योंकि भय के माहौल के कारण ऋण प्रवाह में गिरावट आई थी और अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्र प्रभावित हो रहे थे। बैंकरों के मन में यह धारणा बन गई थी कि जांच के खिलाफ सबसे अच्छा बचाव निष्क्रियता है। सरकार ने इस सप्ताह घोषणा की कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में संशोधन किया गया है और शासकीय सेवकों के खिलाफ कार्रवाई की इजाजत के लिए पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक होगी। सरकार ने अधिक मूल्य की धोखाधड़ी के लिए वर्ष 2015 के फ्रेमवर्क में भी संशोधन किया है। यही कारण है कि सरकारी बैंकों के प्रबंध निदेशकों और मुख्य कार्याधिकारियों को अलग-अलग समय सीमा के अनुपालन के लिए व्यक्तिगत रूप से जवाबदेह नहीं ठहराया जाएगा। सरकार ने सरकारी बैंकों के बोर्ड को सशक्त बनाया है ताकि वे भारतीय रिजर्व बैंक और केंद्रीय सतर्कता आयोग के परिपत्रों द्वारा निर्धारित विभिन्न टाइम लाइन का अनुपालन करने की व्यवस्था बना सकें। इसके अलावा बैंकिंग धोखाधड़ी मामलों के सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गई है ताकि 50 करोड़ रुपये मूल्य से अधिक की धोखाधड़ी के ऐसे मामलों की जांच की जा सके जिनमें महाप्रबंधक और उससे ऊंचे पदों पर आसीन लोग शामिल हों। सलाहकार बोर्ड मामलों की जांच शुरू होने के पहले इनका परीक्षण करेगा। इतना ही नहीं सरकार ने बैंकों से वरिष्ठ अधिकारियों की एक समिति गठित करने को भी कहा ताकि अनुशासनात्मक कार्रवाई तथा आंतरिक सतर्कता के मामलों की निगरानी की जा सके। ऐसे मामलों को हल करने में देरी होने का असर बैंकों के आंतरिक माहौल पर पड़ता है और यह क्षमता को भी प्रभावित करता है।

ये सारे कदम सही दिशा में उठाए गए हैं और इनसे सरकारी बैंकरों के बीच व्याप्त भय दूर होना चाहिए। निश्चित तौर पर ऋण देने के लिए सद्भावनापूर्वक या दुर्भावनापूर्वक लिए गए निर्णयों के बीच अंतर कर पाना आसान नहीं है। संभव है कि तमाम प्रक्रियाओं का उचित पालन करने के बावजूद ऋण देने का निर्णय गलत साबित हो जाए। ऐसे में जांच शुरू करने के पहले शुरुआती परीक्षण करने से बैंकरों की मदद हो सकती है। बहरहाल, यह दलील देना कठिन है कि इतने कदम उठाना भर पर्याप्त होगा। आमतौर पर कानूनी बचाव हमेशा जांच एजेंसियों को जांच शुरू करने या गिरफ्तारी करने से नहीं रोकते। इसके अलावा सरकार को व्यापक तस्वीर पर भी नजर रखनी चाहिए। सरकारी बैंकों में धोखाधड़ी और फंसे हुए कर्ज के मामले केवल भ्रष्टाचार की वजह से नहीं हैं। जैसा कि देश में बैंकिंग की प्रगति और रुझानों से संबंधित आरबीआई की ताजा रिपोर्ट बताती है, वर्ष 2018-19 में बैंकों में धोखाधड़ी के 90 फीसदी मामले सरकारी बैंकों में हुए। रिपोर्ट में कहा गया है कि आंतरिक प्रक्रियाओं, कर्मचारियों और प्रक्रियात्मक जोखिम से निपटने की अपर्याप्तता साफ नजर आती है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि सरकारी बैंकों में व्यापक सुधार की आवश्यकता है ताकि ऋण देने संबंधी जोखिम का आकलन करने के लिए क्षमता विकसित की जा सके। सुधारों के अभाव में सरकारी बैंक धोखाधड़ी और जांच की आशंका में जीते रहेंगे। चाहे भले ही सरकार सुरक्षा के कितने भी उपाय कर दे। चूंकि बैंकिंग तंत्र में सरकारी बैंकों का दबदबा है इसलिए ऋण देने में उनकी अक्षमता आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। यह बात अलग है कि अब उनकी बाजार हिस्सेदारी लगातार कम हो रही है। सरकारी बैंकों में सुधार की तमाम वजह मौजूद हैं। सरकार इनमें निरंतर पूंजी नहीं डालती रह सकती।

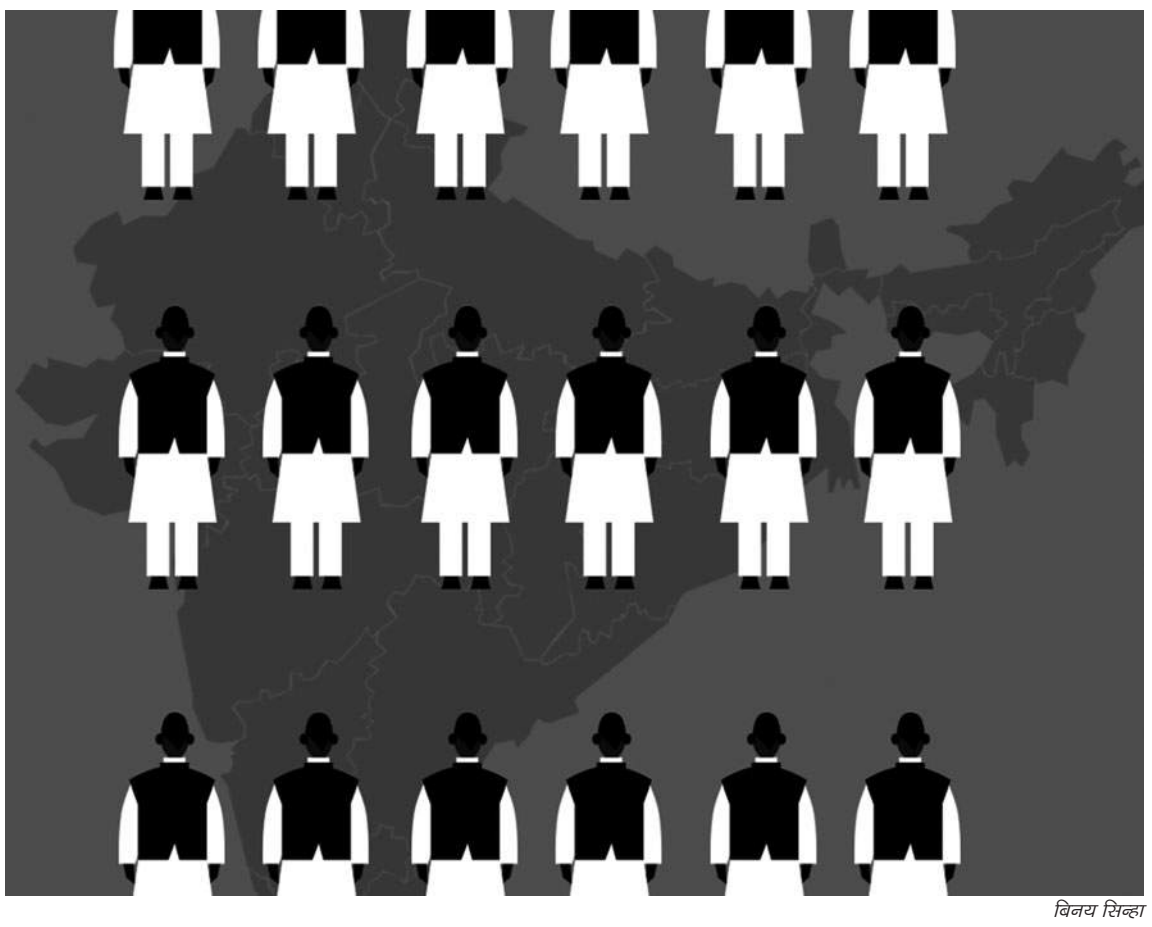

बिनय सिन्हा

विभाजनकारी हो सकता है उत्तर-दक्षिण का अंतर

राष्ट्रीय सौहार्द बरकरार रखने के लिए आवश्यक है कि राजस्व आवंटन तथा संसदीय सीटों की संख्या निर्धारित करने के मामले में सन 1971 की जनगणना को ही मानक बनाए रखा जाए। बता रहे हैं **जैमिनी भगवती**

सन 1990 के दशक के आरंभ में आर्थिक सुधारों की शुरुआत होने के बाद के तीन दशकों में दक्षिण भारत के राज्यों की प्रति व्यक्ति आय में उत्तर भारत के बड़े राज्यों की तुलना में ज्यादा इजाफा हुआ है। सन 1990-91 में कर्नाटक की प्रति व्यक्ति आय बिहार और उत्तर प्रदेश की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में क्रमश: 1.7 और 1.3 गुना ज्यादा थी। वर्ष 2017-18 तक यह अंतर बढ़कर 4.7 और 3.3 गुना हो चुका था। यह सिलसिला जारी है।

एक के बाद एक वित्त आयोगों द्वारा किए गए कर राजस्व आवंटन की बात करें तो यह निरपवाद रूप से विभिन्न राज्यों की आबादी से संबंधित रहा है। उदाहरण के लिए 14वें वित्त आयोग के विचारणीय विषयों में कहा गया है कि जहां करों के बंटवारे तथा अन्य अनुदान देने की बात हो वहां आयोग को आमतौर पर सन 1971 की आबादी के आधार को निर्धारक मानना चाहिए। हालांकि कहा यह भी किया गया कि आयोग सन 1971 के बाद आबादी के स्वरूप में आए बदलाव को भी ध्यान में रख सकता है।

14वें वित्त आयोग की रिपोर्ट के खंड 8 का शीर्षक है 'केंद्रीय कर राजस्व की साझेदारी' और इसमें कहा गया है कि 'हालांकि हमारा मानना है कि आबादी के पुराने आंकड़ों का इस्तेमाल करना उचित नहीं है लेकिन हम विचारणीय विषयों के दायरे से बंधे हुए हैं।'

व्यक्तिगत स्तर पर राज्य सरकारों और केंद्र सरकार के बीच कर राजस्व की साझेदारी को लेकर मतभेद रहे हैं। 15वें वित्त आयोग के विचारणीय विषयों में बदलाव करके कहा गया है कि राज्यों को आवंटन के पहले कुल राजस्व के एक हिस्से को बाहरी रक्षा और आंतरिक सुरक्षा पर होने वाले व्यय के लिए अलग किया जाना चाहिए। कुछ राज्य सरकारों ने इसकी जमकर आलोचना की। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आयोग के विचारणीय विषयों में चुनिंदा बदलाव करना आवश्यक था।

अतीत में वित्त आयोगों ने देश की सुरक्षा को खतरे को केंद्र और राज्यों के बीच संसाधनों का आवंटन करते समय ध्यान में रखा था। अभी हाल ही में राज्यों ने यह मांग की कि उन्हें उन उपकरों और अधिभार में से हिस्सा मिलना चाहिए जो केंद्र सरकार ने एकत्रित किए हैं। हालांकि संविधान में उल्लिखित मौजूदा प्रावधानों के मुताबिक अभी केंद्र सरकार ऐसे राजस्व को पूरी तरह अपने पास रख सकता है। दिसंबर 2019 में जब जीएसटी परिषद में असहमति बनी और लॉटरी पर कराधान को लेकर एक निर्णय पर मतदान हुआ तो ऐसा पहली बार हुआ क्योंकि इससे पहले जीएसटी परिषद के तमाम निर्णय आम सहमति से हुए थे।

15वें वित्त आयोग के विचारणीय विषयों में यह भी कहा गया है कि 'उसे अपनी अनुशंसाएं करते समय सन 2011 की आबादी के आंकड़ों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।' सन 2011 की जनसंख्या के आंकड़ों का इस्तेमाल करने के बाद भी देखें तो भी उत्तर भारत के राज्यों में प्रति व्यक्ति आय, दक्षिण भारत के राज्यों की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम थी। इसका परिणाम 15वें वित्त आयोग द्वारा उत्तर भारत के राज्यों को किए जाने वाले राजस्व आवंटन में इजाफे के रूप में सामने आ सकता है।

जाहिर है आवंटित राशि 14वें वित्त आयोग द्वारा आवंटित राशि की तुलना में अधिक होगी। जाहिर है इससे देश के दक्षिणी हिस्से में मौजूद राज्यों में काफी असंतोष उत्पन्न हो सकता है।

मेरी समझ यह कहती है कि सन 1971 की आबादी के आंकड़ों को वित्त आयोग द्वारा किए जाने वाले आवंटन से जोड़ना उत्तरी भारत के राज्यों के साथ गलत व्यवहार नहीं होगा।

यदि उत्तर भारत के बड़े राज्य बेहतर विकास प्रबंधन करने में सफल रहते तो उनकी आबादी में तेज इजाफा शायद उनके लिए लाभप्रद साबित होता। राज्यों के साथ 'निष्पक्ष' व्यवहार किया जाना चाहिए लेकिन अतीत का कमजोर आर्थिक प्रदर्शन उनके बीच प्राथमिकता देने वाले और पक्षपात करने वाले व्यवहार का कारण नहीं होना चाहिए।

चाहे जो भी उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक लोग अस्थायी या स्थायी तौर पर उच्च प्रति व्यक्ति आय वाले राज्यों में रहने चले जाते हैं। संभव है कि उक्त तरीका जो 14वें वित्त आयोग की रिपोर्ट में उल्लिखित है, उसे 15वें वित्त आयोग द्वारा अपना लिया जाए। खासतौर पर यह देखते हुए कि आबादी के भार और जनांकीय बदलाव के संकेतकों को अलग-अलग पेश किया जाना चाहिए।

पिछले कुछ समय से दक्षिण भारत के राज्यों में इस बात को लेकर चिंता का वातावरण रहा है कि नए सिरे से परिसीमन की कवायद होने के बाद कैसे लोकसभा में उनकी सीटों की तादाद में कमी आएगी। सन 2002 में हुए 84वें संविधान संशोधन के अनुसार संसदीय क्षेत्रों का यह पुनर्आवंटन सन 2031 की जनगणना के मुताबिक किया जाना चाहिए (इंडियाज इमर्जिंग क्राइसिस, लेखक: मिलन वैष्णव और जेमी हिंटसन)।

अटकल यह है कि दक्षिण भारत को लोकसभा सीट के मामले में उत्तर भारत के हाथों 45 सीटों का नुकसान हो सकता है। स्पष्ट है कि दक्षिण के राज्यों को यह बात कतई स्वीकार्य नहीं होगी।

केंद्र सरकार के मौजूदा इरादों को लेकर अशांत होने की वजह नहीं है। बहरहाल, हकीकत यह है कि 15वें वित्त आयोग द्वारा 2011 की जनगणना के आधार पर राज्यों को धन आवंटित करने की बात से अवश्य राज्यों में चिढ़ पैदा हो सकती है। अब से 10 वर्ष बाद यानी 2031 में यदि दक्षिण भारत के राज्यों की लोकसभा सीट कम की जाती हैं तो उनमें भारी नाराजगी पैदा होगी। हालांकि कम प्रति व्यक्ति आय वाले उत्तर भारत के राज्यों की प्रतिक्रिया में भी कोलाहल सुनाई पड़ सकता है। ऐसे में राष्ट्रीय सौहार्द के लिए बेहतर यही होगा कि अगले तीन दशक तक एक बार फिर संसद सदस्यों की तादाद और संसाधनों का आवंटन, दोनों मामलों में सन 1971 की जनगणना को ही मानक रखा जाए।

क्या लोकलुभावन होगा वर्ष 2020 का बजट ?

बाअदब

सोमशेखर सुंदरेशन

इस बार यदि सरकार वित्त अधिनियम में पूरा ध्यान राजकोषीय सुधारों पर केंद्रित करे और संसद के दोनों सदनों से पारित विभिन्न अन्य कानूनों के विभिन्न सूचीपत्रों के माध्यम से होने वाले पुनर्लेखन को समाप्त करे तो अधिक बेहतर होगा।

आम बजट करीब आ गया है और ऐसी चर्चा बढ़ने लगी है कि वित्त विधेयक 2020 में 'लोकलुभावन' उपायों को तवज्जो दी जाएगी। कौन से कदम 'लोकलुभावन' हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि इन्हें लोकलुभावन कौन मानता है? आमतौर पर इसका अर्थ होता है 'अन्य लोगों' के समर्थन में उठाए गए कदम। जब अंग्रेजी मीडिया इस शब्द का इस्तेमाल करता है तो इसका अर्थ होता है कि ऐसे कदम जिनसे किसानों और वेतनभोगी लोग लाभान्वित होंगे। उदाहरण के लिए मानक कटौती में इजाफा, कृषि क्षेत्र में ज्यादा सब्सिडी, फैक्टरियों में रोबोट के इस्तेमाल पर कर लगाना आदि। यदि किसानों और वेतनभोगियों की दृष्टि से देखा जाए तो 'अन्य' का अर्थ होता है उद्योग और अमीर तबका। इनके लिए मददगार कदमों में प्रत्यक्ष कर दरों में कमी, वृद्धि के लिए अधिक निवेश और अंतत: गरीबों के लिए ट्रिकल डाउन प्रभाव की अपेक्षा।

इस वक्त दो चुनौतियां हमारे सामने हैं। पहली, तेजी से बढ़ती असमानता और असमान कर नीति। अप्रत्यक्ष कर जहां अमीर और गरीब एक समान कर चुकाते हैं, वह अभी भी हमारे कर राजस्व में सबसे अधिक हिस्सेदारी रखते हैं। जबकि प्रत्यक्ष कर जो सीधे कर चुकाने वाले की क्षमता से जुड़े हैं और आय के समानुपाती होते हैं, उनका इस्तेमाल राहत प्रदान करने के उपाय के रूप में किया जाता है और अधिकाधिक फंड समाज के हाथ में रखे जाते हैं। प्रत्यक्ष कर में पहले ही काफी राहत दी जा चुकी है। खासतौर पर कारोबारी जगत को राहत दी गई है। इससे कॉर्पोरेट जगत को अधिक आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। अब उसे देने के लिए ज्यादा कुछ नहीं है। देश की आबादी का बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे है, इसके बावजूद हमारे यहां अरबपति तैयार होने का सिलसिला कम होने का नाम नहीं ले रहा। अरबपतियों की तादाद लगातार बढ़ने के बावजूद देश के सामाजिक क्षेत्र में संस्थागत फंडिंग लगातार कम हो रही है।

हम इस बात को समझ नहीं पा रहे हैं कि संपत्ति की असमानता और उसके कारण आ रही असमता सामाजिक क्षेत्र पर कई असाधारण प्रभाव डालेगी। इससे संबंधित सवालों का हल कड़े राजकोषीय सुधारों में निहित है। केवल कर अधिकारियों का भय उत्पन्न करके कर अनुपालन सुनिश्चित करना पर्याप्त नहीं है। सवाल यह है कि कर नीति के लिए क्या महत्त्वपूर्ण है। खराब राजकोषीय नीति के सख्त नियमन से वह हासिल नहीं किया जा सकता है जो समझदारी भरी राजकोषीय नीति से हासिल हो सकता है। आज इस मोर्चे पर होने वाली बहस का ध्रुवीकरण हो चुका है। असमानता का जिक्र करते ही एक ओर से 'वामपंथी' होने का आरोप जड़ दिया जाता है तो दूसरी ओर प्रवर्तन में सुधार की बात करते ही सांठगांठ का आरोप लगाया जाता है।

सरकारी बैंकों की बैलेंस शीट में एक छेद नजर आ रहा है। जाहिर है इन बैंकों को नए सिरे से पूंजी की आवश्यकता होगी। इसे लोकलुभावन की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। हालांकि इसमें भी बैंकों को उस पूंजी की फंडिंग की जाती है जो वे उद्योगों को ऋण देने में गंवा चुके होते हैं। यह काफी हद तक वैसा ही है जैसे कि कृषि ऋण माफी की योजना। इसके अलावा कई गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थान खासतौर पर व्यवस्थागत दृष्टि से अहम संस्थान विफल हो रहे हैं। इनसे निकलने वाले सबक बताते हैं कि संचालन की नाकामियों में इजाफा हुआ है और इनके संस्थागत मूल्यों को क्षति पहुंची है। कई बार नियंत्रण ऐसे लोगों के हाथ में चला जाता है जिनके पास कोई पद तक नहीं होता। आखिरकार किसी न किसी को इसकी कीमत चुकानी होगी। सुधारों की आवश्यकता संस्थानों के सहयोग के लिए धन जुटाने की आवश्यकता से कहीं अलग है। बैंकों और वित्तीय संस्थानों के कारोबारी संचालन में गहन सुधारों के बिना उनमें नई पूंजी डालने का कोई खास अर्थ नहीं निकलेगा। सरकारी बैंकों में अपनी हिस्सेदारी का निगमीकरण करने और बैंकों के कारोबारी प्रशासन को कंपनी कानून के अनुरूप किए बिना हमें इसकी काफी कीमत चुकानी पड़ रही है। कंपनी कानून भी सन 2013 के बाद से काफी लंबा सफर तय कर चुका है। दरअसल सरकारी बैंकों का संचालन जो बैंक राष्ट्रीयकरण कानून में तथा अन्य बैंकों के विधानों में संहिताबद्ध है, वह अप्रचलित ढंग का और बेतरतीब है।

आखिर में इस बार यदि सरकार वित्त अधिनियम में पूरा ध्यान राजकोषीय सुधारों पर केंद्रित करे और संसद के दोनों सदनों से पारित विभिन्न अन्य कानूनों के विभिन्न सूचीपत्रों के माध्यम से होने वाले पुनर्लेखन को समाप्त करे तो अधिक बेहतर होगा। ऐसा रुख अपनाना सही नहीं है जहां धन विधेयक के माध्यम से लोकसभा को राज्य सभा की स्वीकृति के लिए रखे विभिन्न कानूनी प्रावधानों को नकारने का अधिकार दे दिया जाता है। यह आम बजट की कवायद के मुख्य उद्देश्यों से ध्यान हटा देता है। हालिया अनुभव यही बताते हैं कि यह उम्मीद भी व्यर्थ हो सकती है लेकिन यदि व्यर्थ होने की यह अपेक्षा गलत साबित हो तो यह एक सुखद आश्चर्य ही होगा।

(लेखक अधिवक्ता एवं स्वतंत्र परामर्शदाता हैं)

कानाफूसी

सिन्हा से नाराजगी

भाजपा छोड़कर कांग्रेस में शामिल हुए नेता शत्रुघ्न सिन्हा और समाजवादी पार्टी के मुखिया अखिलेश यादव की करीबी उत्तर प्रदेश के कांग्रेस नेताओं के बीच चर्चा का विषय बनी हुई है। हाल ही में शत्रुघ्न सिन्हा और पूर्व केंद्रीय मंत्री यशवंत सिन्हा ने लखनऊ में सपा मुख्यालय में यादव के साथ मंच साझा किया। अभिनेता से राजनेता बने सिन्हा ने 2019 लोकसभा चुनाव के पहले भाजपा का दामन छोड़ दिया था। वह पटना साहब सीट से चुनाव भी लड़े लेकिन हार गए। उनकी पत्नी पूनम सिन्हा लखनऊ से सपा की प्रत्याशी थीं लेकिन उन्हें भी हार का सामना करना पड़ा। उस वक्त लखनऊ से कांग्रेस प्रत्याशी प्रमोद कृष्णन ने ट्विटर के माध्यम से सिन्हा पर हमला बोला था कि वह पार्टी के प्रति वफादार नहीं हैं। प्रदेश कांग्रेस के अन्य नेताओं ने भी सिन्हा की आलोचना करते हुए कहा था कि ऐसे नेताओं को बाहर का रास्ता दिखा दिया जाना चाहिए।

बिहार में तीसरी ताकत

जनता दल (यूनाइटेड) ने बुधवार को पार्टी उपाध्यक्ष और मशहूर चुनावी रणनीतिकार प्रशांत किशोर तथा पूर्व राजनयिक पवन वर्मा को पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से बर्खास्त कर दिया। पार्टी ने कहा कि दोनों नेता पार्टी विरोधी वक्तव्य दे रहे थे। सूत्रों के मुताबिक किशोर बिहार विधानसभा चुनावों की तैयारी में जुटे हुए हैं जो आगामी सितंबर-अक्टूबर में होने हैं। राष्ट्रीय जनता दल के कई नेता भी तेजस्वी यादव से नाराज चल रहे हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय लोकतांत्रिक समता पार्टी के उपेंद्र यादव तथा अन्य नेता भी उस तीसरी शक्ति के साथ आ सकते हैं जिसे किशोर बिहार में आकार देना चाहते हैं। इसमें राजद के विद्रोही, कुछ छोटे दल और वाम धड़ा शामिल हो सकते हैं। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के युवा नेता बिहार का अपना दौरा शुरू करने वाले हैं। राजद प्रमुख लालू प्रसाद जेल में हैं और बीमार हैं। ऐसे में प्रश्न यह है कि क्या कांग्रेस तेजस्वी यादव से नाता तोड़कर जदयू और भाजपा गठबंधन के खिलाफ एक गठबंधन का नेतृत्व करेगी?

प्रशांत किशोर

आपका पक्ष

देश के भविष्य का बने भविष्य

छात्र वर्ग के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियां हैं। उनकी अपनी अनेक समस्याएं हैं। इनमें प्रमुख आर्थिक असमानता है। गांवों के संपन्न किसान या व्यवसायी की संतान अगर अध्ययनशील है तो शहर में भी आसानी से शिक्षा अर्जित की जा सकती है। मगर गरीब के घर में पुत्र को वरीयता दी जाती है। भले ही पुत्री अधिक कर्मठ और मेधावी क्यों न हो। इससे उनके अंदर असंतोष की भावना पनपती है। युवाओं के लिए बेरोजगारी भी एक प्रमुख समस्या है। आज की शिक्षा का ढांचा ऐसा कोई दावा नहीं कर पाता कि डिग्री पाकर भी छात्र अपने लिए एक नौकरी पा सकता है। जब युवा वर्ग डिग्रियों का बंडल लिए एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर धक्के खाता है तो वहां भी असंतोष ही हाथ लगता है। युवा वर्ग की और भी अनेक समस्याएं हैं, मगर सबसे ज्यादा जरूरी उनका समाधान करना है। भले ही वर्तमान सरकार ने इस विषय में कई कदम उठाए हैं। मगर इस विषय पर और भी गंभीरता से विचार करना आवश्यक है। शिक्षा को भी रोजगारोन्मुख बनाना होगा। शिक्षा ऐसी हो जिससे आर्थिक असमानता, असंतोष दूर हो और युवाओं के चरित्र निर्माण में सहायक हो। आज के विद्यार्थी के सम्मुख देश में एकता की

मगध महिला कॉलेज पटना में छात्र-छात्राओं ने सरस्वती पूजा के अवसर पर बसंत उत्सव मनाया

भावना उत्पन्न करने एवं नए समाज के निर्माण की चुनौतियां भी हैं। देश में आतंकवाद उभर रहा है। उन्हें खत्म करने का काम आज का छात्र वर्ग ही कर सकता है। आज के छात्र के सामने देश के नव-निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने की भी चुनौती है। छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि यह वर्ग देश को प्रगति की राह में आगे ले जाने के दायित्व का निर्वाह करेगा। उससे ऐसी अपेक्षा करना अनुचित है, पर असंतुष्ट विद्यार्थी भला देश के उत्थान का काम क्या रुचिपूर्वक कर सकेगा। उसके असंतोष के कारणों को जानकर उनका निदान करना आवश्यक है।

अनु मिश्रा, सीवान

संविधान की मर्यादा का रखें ख्याल

महात्मा गांधी ने गणतंत्र के लिए यह विचार रखा था कि वह ऐसे संविधान के लिए प्रयत्न करेंगे जिसमें छोटे से छोटे व्यक्ति को भी यह अहसास हो यह देश उसका है। इसके निर्माण में उनका योगदान है। उसकी आवाज का यहां महत्त्व है। लेकिन वर्तमान में शायद राजनेता इसका अनुसरण नहीं कर रहे हैं जिससे आज गण और तंत्र के बीच का फासला बढ़ता जा रहा है। गण पर तंत्र का हावी होना यह भी दर्शाता है कि देश की राजनीति और नौकरशाही में असामाजिक तत्त्वों की बढ़ोतरी हो रही है। गण के तंत्र में आए खोट को दूर करने के लिए गण भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इसे चुनाव में अपने मताधिकार का प्रयोग राजनीतिक तौर पर जागरूक होकर दूर करने का प्रयत्न किया जा सकता है। गणतंत्र की आन, बान और शान के लिए प्रत्येक नागरिक को अपने अंदर देशभक्ति की भावना भरनी चाहिए। संविधान में मिले अधिकारों के प्रति ही नहीं, बल्कि कर्तव्यों के प्रति भी गंभीरता दिखानी होगी। अगर भारत को हर समस्या से मुक्त करना है तो देश के हरेक नागरिक को अपने स्वार्थ की भावना को छोड़ना होगा।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।